भगतसिंह (1931)

मैं नास्तिक क्यों हूँ?

यह लेख भगत सिंह ने जेल में रहते हुए लिखा था और यह 27 सितम्बर 1931 को लाहौर के अखबार “ द पीपल “ में प्रकाशित हुआ । इस लेख में भगतसिंह ने ईश्वर कि उपस्थिति पर अनेक तर्कपूर्ण सवाल खड़े किये हैं और इस संसार के निर्माण , मनुष्य के जन्म , मनुष्य के मन में ईश्वर की कल्पना के साथ साथ संसार में मनुष्य की दीनता , उसके शोषण , दुनिया में व्याप्त अराजकता और और वर्गभेद की स्थितियों का भी विश्लेषण किया है । यह भगत सिंह के लेखन के सबसे चर्चित हिस्सों में रहा है।

स्वतन्त्रता सेनानी बाबा रणधीर सिंह 1930-31के बीच लाहौर के सेन्ट्रल जेल में कैद थे। वे एक धार्मिक व्यक्ति थे जिन्हें यह जान कर बहुत कष्ट हुआ कि भगतसिंह का ईश्वर पर विश्वास नहीं है। वे किसी तरह भगत सिंह की कालकोठरी में पहुँचने में सफल हुए और उन्हें ईश्वर के अस्तित्व पर यकीन दिलाने की कोशिश की। असफल होने पर बाबा ने नाराज होकर कहा, “प्रसिद्धि से तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है और तुम अहंकारी बन गए हो जो कि एक काले पर्दे के तरह तुम्हारे और ईश्वर के बीच खड़ी है। इस टिप्पणी के जवाब में ही भगतसिंह ने यह लेख लिखा।

एक नया प्रश्न उठ खड़ा हुआ है। क्या मैं किसी अहंकार के कारण सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी तथा सर्वज्ञानी ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास नहीं करता हूँ? मेरे कुछ दोस्त - शायद ऐसा कहकर मैं उन पर बहुत अधिकार नहीं जमा रहा हूँ - मेरे साथ अपने थोड़े से सम्पर्क में इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिये उत्सुक हैं कि मैं ईश्वर के अस्तित्व को नकार कर कुछ ज़रूरत से ज़्यादा आगे जा रहा हूँ और मेरे घमण्ड ने कुछ हद तक मुझे इस अविश्वास के लिये उकसाया है। मैं ऐसी कोई शेखी नहीं बघारता कि मैं मानवीय कमज़ोरियों से बहुत ऊपर हूँ। मैं एक मनुष्य हूँ, और इससे अधिक कुछ नहीं। कोई भी इससे अधिक होने का दावा नहीं कर सकता। यह कमज़ोरी मेरे अन्दर भी है। अहंकार भी मेरे स्वभाव का अंग है। अपने कामरेडो के बीच मुझे निरंकुश कहा जाता था। यहाँ तक कि मेरे दोस्त श्री बटुकेश्वर कुमार दत्त भी मुझे कभी-कभी ऐसा कहते थे। कई मौकों पर स्वेच्छाचारी कह मेरी निन्दा भी की गयी। कुछ दोस्तों को शिकायत है, और गम्भीर रूप से है कि मैं अनचाहे ही अपने विचार, उन पर थोपता हूँ और अपने प्रस्तावों को मनवा लेता हूँ। यह बात कुछ हद तक सही है। इससे मैं इनकार नहीं करता। इसे अहंकार कहा जा सकता है। जहाँ तक अन्य प्रचलित मतों के मुकाबले हमारे अपने मत का सवाल है। मुझे निश्चय ही अपने मत पर गर्व है। लेकिन यह व्यक्तिगत नहीं है। ऐसा हो सकता है कि यह केवल अपने विश्वास के प्रति न्यायोचित गर्व हो और इसको घमण्ड नहीं कहा जा सकता। घमण्ड तो स्वयं के प्रति अनुचित गर्व की अधिकता है। क्या यह अनुचित गर्व है, जो मुझे नास्तिकता की ओर ले गया? अथवा इस विषय का खूब सावधानी से अध्ययन करने और उस पर खूब विचार करने के बाद मैंने ईश्वर पर

अविश्वास किया?

मैं यह समझने में पूरी तरह से असफल रहा हूँ कि अनुचित गर्व या वृथाभिमान किस तरह किसी व्यक्ति के ईश्वर में विश्वास करने के रास्ते में रोड़ा बन सकता है? किसी वास्तव में महान व्यक्ति की महानता को मैं मान्यता न दूँ - यह तभी हो सकता है, जब मुझे भी थोड़ा ऐसा यश प्राप्त हो गया हो जिसके या तो मैं योग्य नहीं हूँ या मेरे अन्दर वे गुण नहीं हैं, जो इसके लिये आवश्यक हैं। यहाँ तक तो समझ में आता है। लेकिन यह कैसे हो सकता है कि एक व्यक्ति, जो ईश्वर में विश्वास रखता हो, सहसा अपने व्यक्तिगत अहंकार के कारण उसमें विश्वास करना बन्द कर दे? दो ही रास्ते सम्भव हैं। या तो मनुष्य अपने को ईश्वर का प्रतिद्वन्द्वी समझने लगे या वह स्वयं को ही ईश्वर मानना शुरू कर दे। इन दोनो ही अवस्थाओं में वह सच्चा नास्तिक नहीं बन सकता। पहली अवस्था में तो वह अपने प्रतिद्वन्द्वी के अस्तित्व को नकारता ही नहीं है। दूसरी अवस्था में भी वह एक ऐसी चेतना के अस्तित्व को मानता है, जो पर्दे के पीछे से प्रकृति की सभी गतिविधियों का संचालन करती है। मैं तो उस सर्वशक्तिमान परम आत्मा के अस्तित्व से ही इनकार करता हूँ। यह अहंकार नहीं है, जिसने मुझे नास्तिकता के सिद्धान्त को ग्रहण करने के लिये प्रेरित किया। मैं न तो एक प्रतिद्वन्द्वी हूँ, न ही एक अवतार और न ही स्वयं परमात्मा। इस अभियोग को अस्वीकार करने के लिये आइए तथ्यों पर गौर करें। मेरे इन दोस्तों के अनुसार, दिल्ली बम केस और लाहौर षडयन्त्र केस के दौरान मुझे जो अनावश्यक यश मिला, शायद उस कारण मैं वृथाभिमानी हो गया हूँ।

मेरा नास्तिकतावाद कोई अभी हाल की उत्पत्ति नहीं है। मैंने तो ईश्वर पर विश्वास करना तब छोड़ दिया था, जब मैं एक अप्रसिद्ध नौजवान था। कम से कम एक कालेज का विद्यार्थी तो ऐसे किसी अनुचित अहंकार को नहीं पाल-पोस सकता, जो उसे नास्तिकता की ओर ले जाये। यद्यपि मैं कुछ अध्यापकों का चहेता था तथा कुछ अन्य को मैं अच्छा नहीं लगता था। पर मैं कभी भी बहुत मेहनती अथवा पढ़ाकू विद्यार्थी नहीं रहा। अहंकार जैसी भावना में फँसने का कोई मौका ही न मिल सका। मैं तो एक बहुत लज्जालु स्वभाव का लड़का था, जिसकी भविष्य के बारे में कुछ निराशावादी प्रकृति थी। मेरे बाबा, जिनके प्रभाव में मैं बड़ा हुआ, एक रूढ़िवादी आर्य समाजी हैं। एक आर्य समाजी और कुछ भी हो, नास्तिक नहीं होता। अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी करने के बाद मैंने डी0 ए0 वी0 स्कूल, लाहौर में प्रवेश लिया और पूरे एक साल उसके छात्रावास में रहा। वहाँ सुबह और शाम की प्रार्थना के अतिरिक्त में घण्टों गायत्री मंत्र जपा करता था। उन दिनों मैं पूरा भक्त था। बाद में मैंने अपने पिता के साथ रहना शुरू किया। जहाँ तक धार्मिक रूढ़िवादिता का प्रश्न है, वह एक उदारवादी व्यक्ति हैं। उन्हीं की शिक्षा से मुझे स्वतन्त्रता के ध्येय के लिये अपने जीवन को समर्पित करने की प्रेरणा मिली। किन्तु वे नास्तिक नहीं हैं। उनका ईश्वर में दृढ़ विश्वास है। वे मुझे प्रतिदिन पूजा-प्रार्थना के लिये प्रोत्साहित करते रहते थे। इस प्रकार से मेरा पालन-पोषण हुआ। असहयोग आन्दोलन के दिनों में राष्ट्रीय कालेज में प्रवेश लिया। यहाँ आकर ही मैंने सारी धार्मिक समस्याओं - यहाँ तक कि ईश्वर के अस्तित्व के बारे में उदारतापूर्वक सोचना, विचारना तथा उसकी आलोचना करना शुरू किया। पर अभी भी मैं पक्का आस्तिक था। उस समय तक मैं अपने लम्बे बाल रखता था। यद्यपि मुझे कभी-भी सिक्ख या अन्य धर्मों की

पौराणिकता और सिद्धान्तों में विश्वास न हो सका था। किन्तु मेरी ईश्वर के अस्तित्व में दृढ़ निष्ठा थी। बाद में मैं क्रान्तिकारी पार्टी से जुड़ा। वहाँ जिस पहले नेता से मेरा सम्पर्क हुआ वे तो पक्का विश्वास न होते हुए भी ईश्वर के अस्तित्व को नकारने का साहस ही नहीं कर सकते थे। ईश्वर के बारे में मेरे हठ पूर्वक पूछते रहने पर वे कहते, ''जब इच्छा हो, तब पूजा कर लिया करो।'' यह नास्तिकता है, जिसमें साहस का अभाव है। दूसरे नेता, जिनके मैं सम्पर्क में आया, पक्के श्रद्धालु आदरणीय कामरेड शचीन्द्र नाथ सान्याल आजकल काकोरी षडयन्त्र केस के सिलसिले में आजीवन कारवास भोग रहे हैं। उनकी पुस्तक 'बन्दी जीवन' ईश्वर की महिमा का ज़ोर-शोर से गान है। उन्होंने उसमें ईश्वर के ऊपर प्रशंसा के पुष्प रहस्यात्मक वेदान्त के कारण बरसाये हैं। 28 जनवरी, 1925 को पूरे भारत में जो 'दि रिवोल्यूशनरी' (क्रान्तिकारी) पर्चा बाँटा गया था, वह उन्हीं के बौद्धिक श्रम का परिणाम है। उसमें सर्वशक्तिमान और उसकी लीला एवं कार्यों की प्रशंसा की गयी है। मेरा ईश्वर के प्रति अविश्वास का भाव क्रान्तिकारी दल में भी प्रस्फुटित नहीं हुआ था। काकोरी के सभी चार शहीदों ने अपने अन्तिम दिन भजन-प्रार्थना में गुजारे थे। राम प्रसाद 'बिस्मिल' एक रूढ़िवादी आर्य समाजी थे। समाजवाद तथा साम्यवाद में अपने वृहद अध्ययन के बावजूद राजेन लाहड़ी उपनिषद एवं गीता के श्लोकों के उच्चारण की अपनी अभिलाषा को दबा न सके। मैंने उन सब मे सिर्फ एक ही व्यक्ति को देखा, जो कभी प्रार्थना नहीं करता था और कहता था, ''दर्शन शास्त्र मनुष्य की दुर्बलता अथवा ज्ञान के सीमित होने के कारण उत्पन्न होता है। वह भी आजीवन निर्वासन की सजा भोग रहा है। परन्तु उसने भी ईश्वर के अस्तित्व को नकारने की कभी हिम्मत नहीं की।

इस समय तक मैं केवल एक रोमान्टिक आदर्शवादी क्रान्तिकारी था। अब तक हम दूसरों का अनुसरण करते थे। अब अपने कन्धों पर ज़िम्मेदारी उठाने का समय आया था। यह मेरे क्रान्तिकारी जीवन का एक निर्णायक बिन्दु था। 'अध्ययन' की पुकार मेरे मन के गलियारों में गूँज रही थी - विरोधियों द्वारा रखे गये तर्कों का सामना करने योग्य बनने के लिये अध्ययन करो। अपने मत के पक्ष में तर्क देने के लिये सक्षम होने के वास्ते पढ़ो। मैंने पढ़ना शुरू कर दिया। इससे मेरे पुराने विचार व विश्वास अद्भुत रूप से परिष्कृत हुए। रोमांस की जगह गम्भीर विचारों ने ली ली। न और अधिक रहस्यवाद, न ही अन्धविश्वास। यथार्थवाद हमारा आधार बना। मुझे विश्वक्रान्ति के अनेक आदर्शों के बारे में पढ़ने का खूब मौका मिला। मैंने अराजकतावादी नेता बाकुनिन को पढ़ा, कुछ साम्यवाद के पिता मार्क्स को, किन्तु अधिक लेनिन, त्रात्स्की, व अन्य लोगों को पढ़ा, जो अपने देश में सफलतापूर्वक क्रान्ति लाये थे। ये सभी नास्तिक थे। बाद में मुझे निरलम्ब स्वामी की पुस्तक 'सहज ज्ञान' मिली। इसमें रहस्यवादी नास्तिकता थी। 1926 के अन्त तक मुझे इस बात का विश्वास हो गया कि एक सर्वशक्तिमान परम आत्मा की बात, जिसने ब्रह्माण्ड का सृजन, दिग्दर्शन और संचालन किया, एक कोरी बकवास है। मैंने अपने इस अविश्वास को प्रदर्शित किया। मैंने इस विषय पर अपने दोस्तों से बहस की। मैं एक घोषित नास्तिक हो चुका था।

मई 1927 में मैं लाहौर में गिरफ़्तार हुआ। रेलवे पुलिस हवालात में मुझे एक महीना काटना पड़ा। पुलिस अफ़सरों ने मुझे बताया कि मैं लखनऊ में था, जब वहाँ काकोरी दल का मुकदमा चल रहा था, कि मैंने उन्हें छुड़ाने की किसी योजना पर बात की थी,

कि उनकी सहमति पाने के बाद हमने कुछ बम प्राप्त किये थे, कि 1927 में दशहरा के अवसर पर उन बमों में से एक परीक्षण के लिये भीड़ पर फेंका गया, कि यदि मैं क्रान्तिकारी दल की गतिविधियों पर प्रकाश डालने वाला एक वक्तव्य दे दूँ, तो मुझे गिरफ़्तार नहीं किया जायेगा और इसके विपरीत मुझे अदालत में मुखबिर की तरह पेश किये बेगैर रिहा कर दिया जायेगा और इनाम दिया जायेगा। मैं इस प्रस्ताव पर हँसा। यह सब बेकार की बात थी। हम लोगों की भाँति विचार रखने वाले अपनी निर्दोष जनता पर बम नहीं फेंका करते। एक दिन सुबह सी0 आई0 डी0 के वरिष्ठ अधीक्षक श्री न्यूमन ने कहा कि यदि मैंने वैसा वक्तव्य नहीं दिया, तो मुझ पर काकोरी केस से सम्बन्धित विद्रोह छेड़ने के षडयन्त्र तथा दशहरा उपद्रव में क्रूर हत्याओं के लिये मुकदमा चलाने पर बाध्य होंगे और कि उनके पास मुझे सजा दिलाने व फाँसी पर लटकवाने के लिये उचित प्रमाण हैं। उसी दिन से कुछ पुलिस अफ़सरों ने मुझे नियम से दोनो समय ईश्वर की स्तुति करने के लिये फुसलाना शुरू किया। पर अब मैं एक नास्तिक था। मैं स्वयं के लिये यह बात तय करना चाहता था कि क्या शान्ति और आनन्द के दिनों में ही मैं नास्तिक होने का दम्भ भरता हूँ या ऐसे कठिन समय में भी मैं उन सिद्धान्तों पर अडिग रह सकता हूँ। बहुत सोचने के बाद मैंने निश्चय किया कि किसी भी तरह ईश्वर पर विश्वास तथा प्रार्थना मैं नहीं कर सकता। नहीं, मैंने एक क्षण के लिये भी नहीं की। यही असली परीक्षण था और मैं सफल रहा। अब मैं एक पक्का अविश्वासी था और तब से लगातार हूँ। इस परीक्षण पर खरा उतरना आसान काम न था। 'विश्वास' कष्टों को हलका कर देता है। यहाँ तक कि उन्हें सुखकर बना सकता है। ईश्वर में मनुष्य को अत्यधिक सान्त्वना देने वाला एक आधार मिल सकता है। उसके बिना मनुष्य को अपने ऊपर निर्भर करना पड़ता है। तूफ़ान और झंझावात के बीच अपने पाँवों पर खड़ा रहना कोई बच्चों का खेल नहीं है। परीक्षा की इन घड़ियों में अहंकार यदि है, तो भाप बन कर उड़ जाता है और मनुष्य अपने विश्वास को ठुकराने का साहस नहीं कर पाता। यदि ऐसा करता है, तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उसके पास सिर्फ़ अहंकार नहीं वरन् कोई अन्य शक्ति है। आज बिलकुल वैसी ही स्थिति है। निर्णय का पूरा-पूरा पता है। एक सप्ताह के अन्दर ही यह घोषित हो जायेगा कि मैं अपना जीवन एक ध्येय पर न्योछावर करने जा रहा हूँ। इस विचार के अतिरिक्त और क्या सान्त्वना हो सकती है? ईश्वर में विश्वास रखने वाला हिन्दू पुनर्जन्म पर राजा होने की आशा कर सकता है। एक मुसलमान या ईसाई स्वर्ग में व्याप्त समृद्धि के आनन्द की तथा अपने कष्टों और बलिदान के लिये पुरस्कार की कल्पना कर सकता है। किन्तु मैं क्या आशा करूँ? मैं जानता हूँ कि जिस क्षण रस्सी का फ़न्दा मेरी गर्दन पर लगेगा और मेरे पैरों के नीचे से तख़्ता हटेगा, वह पूर्ण विराम होगा - वह अन्तिम क्षण होगा। मैं या मेरी आत्मा सब वहीं समाप्त हो जायेगी। आगे कुछ न रहेगा। एक छोटी सी जूझती हुई ज़िन्दगी, जिसकी कोई ऐसी गौरवशाली परिणति नहीं है, अपने में स्वयं एक पुरस्कार होगी - यदि मुझमें इस दृष्टि से देखने का साहस हो। बिना किसी स्वार्थ के यहाँ या यहाँ के बाद पुरस्कार की इच्छा के बिना, मैंने अनासक्त भाव से अपने जीवन को स्वतन्त्रता के ध्येय पर समर्पित कर दिया है, क्योंकि मैं और कुछ कर ही नहीं सकता था। जिस दिन हमें इस मनोवृत्ति के बहुत-से पुरुष और महिलाएँ मिल जायेंगे, जो अपने जीवन को मनुष्य की सेवा और पीड़ित मानवता के उद्धार के अतिरिक्त कहीं समर्पित कर ही नहीं सकते, उसी दिन मुक्ति के युग का शुभारम्भ होगा। वे शोषकों, उत्पीड़कों और अत्याचारियों को

चुनौती देने के लिये उत्प्रेरित होंगे। इस लिये नहीं कि उन्हें राजा बनना है या कोई अन्य पुरस्कार प्राप्त करना है यहाँ या अगले जन्म में या मृत्योपरान्त स्वर्ग में। उन्हें तो मानवता की गर्दन से दासता का जुआ उतार फेंकने और मुक्ति एवं शान्ति स्थापित करने के लिये इस मार्ग को अपनाना होगा। क्या वे उस रास्ते पर चलेंगे जो उनके अपने लिये ख़तरनाक किन्तु उनकी महान आत्मा के लिये एक मात्र कल्पनीय रास्ता है। क्या इस महान ध्येय के प्रति उनके गर्व को अहंकार कहकर उसका गलत अर्थ लगाया जायेगा? कौन इस प्रकार के घृणित विशेषण बोलने का साहस करेगा? या तो वह मूर्ख है या धूर्त। हमें चाहिए कि उसे क्षमा कर दें, क्योंकि वह उस हृदय में उद्वेलित उच्च विचारों, भावनाओं, आवेगों तथा उनकी गहराई को महसूस नहीं कर सकता। उसका हृदय मांस के एक टुकड़े की तरह मृत है। उसकी आँखों पर अन्य स्वार्थों के प्रेतों की छाया पड़ने से वे कमज़ोर हो गयी हैं। स्वयं पर भरोसा रखने के गुण को सदैव अहंकार की संज्ञा दी जा सकती है। यह दुखपूर्ण और कष्टप्रद है, पर चारा ही क्या है?

आलोचना और स्वतन्त्र विचार एक क्रान्तिकारी के दोनो अनिवार्य गुण हैं। क्योंकि हमारे पूर्वजों ने किसी परम आत्मा के प्रति विश्वास बना लिया था। अतः कोई भी व्यक्ति जो उस विश्वास को सत्यता या उस परम आत्मा के अस्तित्व को ही चुनौती दे, उसको विधर्मी, विश्वासघाती कहा जायेगा। यदि उसके तर्क इतने अकाट्य हैं कि उनका खण्डन वितर्क द्वारा नहीं हो सकता और उसकी आस्था इतनी प्रबल है कि उसे ईश्वर के प्रकोप से होने वाली विपत्तियों का भय दिखा कर दबाया नहीं जा सकता तो उसकी यह कह कर निन्दा की जायेगी कि वह वृथाभिमानी है। यह मेरा अहंकार नहीं था, जो मुझे नास्तिकता की ओर ले गया। मेरे तर्क का तरीका संतोषप्रद सिद्ध होता है या नहीं इसका निर्णय मेरे पाठकों को करना है, मुझे नहीं। मैं जानता हूँ कि ईश्वर पर विश्वास ने आज मेरा जीवन आसान और मेरा बोझ हलका कर दिया होता। उस पर मेरे अविश्वास ने सारे वातावरण को अत्यन्त शुष्क बना दिया है। थोड़ा-सा रहस्यवाद इसे कवित्वमय बना सकता है। किन्तु मेरे भाग्य को किसी उन्माद का सहारा नहीं चाहिए। मैं यथार्थवादी हूँ। मैं अन्तः प्रकृति पर विवेक की सहायता से विजय चाहता हूँ। इस ध्येय में मैं सदैव सफल नहीं हुआ हूँ। प्रयास करना मनुष्य का कर्तव्य है। सफलता तो संयोग तथा वातावरण पर निर्भर है। कोई भी मनुष्य, जिसमें तनिक भी विवेक शक्ति है, वह अपने वातावरण को तार्किक रूप से समझना चाहेगा। जहाँ सीधा प्रमाण नहीं है, वहाँ दर्शन शास्त्र का महत्व है। जब हमारे पूर्वजों ने फुरसत के समय विश्व के रहस्य को, इसके भूत, वर्तमान एवं भविष्य को, इसके क्यों और कहाँ से को समझने का प्रयास किया तो सीधे परिणामों के कठिन अभाव में हर व्यक्ति ने इन प्रश्नों को अपने ढ़ंग से हल किया। यही कारण है कि विभिन्न धार्मिक मतों में हमको इतना अन्तर मिलता है, जो कभी-कभी वैमनस्य तथा झगड़े का रूप ले लेता है। न केवल पूर्व और पश्चिम के दर्शनों में मतभेद है, बल्कि प्रत्येक गोलार्ध के अपने विभिन्न मतों में आपस में अन्तर है। पूर्व के धर्मों में, इस्लाम तथा हिन्दू धर्म में ज़रा भी अनुरूपता नहीं है। भारत में ही बौद्ध तथा जैन धर्म उस ब्राह्मणवाद से बहुत अलग है, जिसमें स्वयं आर्यसमाज व सनातन धर्म जैसे विरोधी मत पाये जाते हैं। पुराने समय का एक स्वतन्त्र विचारक चार्वाक है। उसने ईश्वर को पुराने समय में ही चुनौती दी थी। हर व्यक्ति अपने को सही मानता है। दुर्भाग्य की बात है कि बजाय पुराने विचारकों के अनुभवों तथा

विचारों को भविष्य में अज्ञानता के विरुद्ध लड़ाई का आधार बनाने के हम आलसियों की तरह, जो हम सिद्ध हो चुके हैं, उनके कथन में अविचल एवं संशयहीन विश्वास की चीख पुकार करते रहते हैं और इस प्रकार मानवता के विकास को जड़ बनाने के दोषी हैं।

सिर्फ विश्वास और अन्ध विश्वास ख़तरनाक है। यह मस्तिष्क को मूढ़ और मनुष्य को प्रतिक्रियावादी बना देता है। जो मनुष्य अपने को यथार्थवादी होने का दावा करता है, उसे समस्त प्राचीन रूढ़िगत विश्वासों को चुनौती देनी होगी। प्रचलित मतों को तर्क की कसौटी पर कसना होगा। यदि वे तर्क का प्रहार न सह सके, तो टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़ेगा। तब नये दर्शन की स्थापना के लिये उनको पूरा धराशायी करकेे जगह साफ करना और पुराने विश्वासों की कुछ बातों का प्रयोग करके पुनर्निमाण करना। मैं प्राचीन विश्वासांे के ठोसपन पर प्रश्न करने के सम्बन्ध में आश्वस्त हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि एक चेतन परम आत्मा का, जो प्रकृति की गति का दिग्दर्शन एवं संचालन करता है, कोई अस्तित्व नहीं है। हम प्रकृति में विश्वास करते हैं और समस्त प्रगतिशील आन्दोलन का ध्येय मनुष्य द्वारा अपनी सेवा के लिये प्रकृति पर विजय प्राप्त करना मानते हैं। इसको दिशा देने के पीछे कोई चेतन शक्ति नहीं है। यही हमारा दर्शन है। हम आस्तिकों से कुछ प्रश्न करना चाहते हैं।

यदि आपका विश्वास है कि एक सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक और सर्वज्ञानी ईश्वर है, जिसने विश्व की रचना की, तो कृपा करके मुझे यह बतायें कि उसने यह रचना क्यों की? कष्टों और संतापों से पूर्ण दुनिया - असंख्य दुखों के शाश्वत अनन्त गठबन्धनों से ग्रसित! एक भी व्यक्ति तो पूरी तरह संतृष्ट नही है। कृपया यह न कहें कि यही उसका नियम है। यदि वह किसी नियम से बँधा है तो वह सर्वशक्तिमान नहीं है। वह भी हमारी ही तरह नियमों का दास है। कृपा करके यह भी न कहें कि यह उसका मनोरंजन है। नीरो ने बस एक रोम जलाया था। उसने बहुत थोड़ी संख्या में लोगांेें की हत्या की थी। उसने तो बहुत थोड़ा दुख पैदा किया, अपने पूर्ण मनोरंजन के लिये। और उसका इतिहास में क्या स्थान है? उसे इतिहासकार किस नाम से बुलाते हैं? सभी विषैले विशेषण उस पर बरसाये जाते हैं। पन्ने उसकी निन्दा के वाक्यों से काले पुते हैं, भत्र्सना करते हैं - नीरो एक हृदयहीन, निर्दयी, दुष्ट। एक चंगेज खाँ ने अपने आनन्द के लिये कुछ हजार जानें ले लीं और आज हम उसके नाम से घृणा करते हैं। तब किस प्रकार तुम अपने ईश्वर को न्यायोचित ठहराते हो? उस शाश्वत नीरो को, जो हर दिन, हर घण्टे ओर हर मिनट असंख्य दुख देता रहा, और अभी भी दे रहा है। फिर तुम कैसे उसके दुष्कर्मों का पक्ष लेने की सोचते हो, जो चंगेज खाँ से प्रत्येक क्षण अधिक है? क्या यह सब बाद में इन निर्दोष कष्ट सहने वालों को पुरस्कार और गलती करने वालों को दण्ड देने के लिये हो रहा है? ठीक है, ठीक है। तुम कब तक उस व्यक्ति को उचित ठहराते रहोगे, जो हमारे शरीर पर घाव करने का साहस इसलिये करता है कि बाद में मुलायम और आरामदायक मलहम लगायेगा? ग्लैडिएटर संस्था के व्यवस्थापक कहाँ तक उचित करते थे कि एक भूखे ख़ूंख़्वार शेर के सामने मनुष्य को फेंक दो कि, यदि वह उससे जान बचा लेता है, तो उसकी खूब देखभाल की जायेगी? इसलिये मैं पूछता हूँ कि उस चेतन परम आत्मा ने इस विश्व और उसमें मनुष्यों की रचना क्यों की? आनन्द लूटने के लिये? तब उसमें और नीरो में क्या फर्क है?

तुम मुसलमानो और ईसाइयो! तुम तो पूर्वजन्म में विश्वास नहीं करते। तुम तो हिन्दुओं की तरह यह तर्क पेश नहीं कर सकते कि प्रत्यक्षतः निर्दोष व्यक्तियों के कष्ट उनके पूर्वजन्मों के कर्मों का फल है। मैं तुमसे पूछता हूँ कि उस सर्वशक्तिशाली ने शब्द द्वारा विश्व के उत्पत्ति के लिये छः दिन तक क्यों परिश्रम किया? और प्रत्येक दिन वह क्यों कहता है कि सब ठीक है? बुलाओ उसे आज। उसे पिछला इतिहास दिखाओ। उसे आज की परिस्थितियों का अध्ययन करने दो। हम देखेंगे कि क्या वह कहने का साहस करता है कि सब ठीक है। कारावास की काल-कोठरियों से लेकर झोपड़ियों की बस्तियों तक भूख से तड़पते लाखों इन्सानों से लेकर उन शोषित मज़दूरों से लेकर जो पूँजीवादी पिशाच द्वारा खून चूसने की क्रिया को धैर्यपूर्वक निरुत्साह से देख रहे हैं तथा उस मानवशक्ति की बर्बादी देख रहे हैं, जिसे देखकर कोई भी व्यक्ति, जिसे तनिक भी सहज ज्ञान है, भय से सिहर उठेगा, और अधिक उत्पादन को ज़रूरतमन्द लोगों में बाँटने के बजाय समुद्र में फेंक देना बेहतर समझने से लेकर राजाआंे के उन महलों तक जिनकी नींव मानव की हड्डियों पर पड़ी है- उसको यह सब देखने दो और फिर कहे - सब कुछ ठीक है! क्यों और कहाँ से? यही मेरा प्रश्न है। तुम चुप हो। ठीक है, तो मैं आगे चलता हूँ।

और तुम हिन्दुओ, तुम कहते हो कि आज जो कष्ट भोग रहे हैं, ये पूर्वजन्म के पापी हैं और आज के उत्पीड़क पिछले जन्मों में साधु पुरुष थे, अतः वे सत्ता का आनन्द लूट रहे हैं। मुझे यह मानना पड़ता है कि आपके पूर्वज बहुत चालाक व्यक्ति थे। उन्होंने ऐसे सिद्धान्त गढ़े, जिनमें तर्क और अविश्वास के सभी प्रयासों को विफल करने की काफ़ी ताकत है। न्यायशास्त्र के अनुसार दण्ड को अपराधी पर पड़ने वाले असर के आधार पर केवल तीन कारणों से उचित ठहराया जा सकता है। वे हैं - प्रतिकार, भय तथा सुधार। आज सभी प्रगतिशील विचारकों द्वारा प्रतिकार के सिद्धान्त की निन्दा की जाती है। भयभीत करने के सिद्धान्त का भी अन्त वहीं है। सुधार करने का सिद्धान्त ही केवल आवश्यक है और मानवता की प्रगति के लिये अनिवार्य है। इसका ध्येय अपराधी को योग्य और शान्तिप्रिय नागरिक के रूप में समाज को लौटाना है। किन्तु यदि हम मनुष्यों को अपराधी मान भी लें, तो ईश्वर द्वारा उन्हें दिये गये दण्ड की क्या प्रकृति है? तुम कहते हो वह उन्हें गाय, बिल्ली, पेड़, जड़ी-बूटी या जानवर बनाकर पैदा करता है। तुम ऐसे 84 लाख दण्डों को गिनाते हो। मैं पूछता हूँ कि मनुष्य पर इनका सुधारक के रूप में क्या असर है? तुम ऐसे कितने व्यक्तियों से मिले हो, जो यह कहते हैं कि वे किसी पाप के कारण पूर्वजन्म में गधा के रूप में पैदा हुए थे? एक भी नहीं? अपने पुराणों से उदाहरण न दो। मेरे पास तुम्हारी पौराणिक कथाओं के लिए कोई स्थान नहीं है। और फिर क्या तुम्हें पता है कि दुनिया में सबसे बड़ा पाप गरीब होना है। गरीबी एक अभिशाप है। यह एक दण्ड है। मैं पूछता हूँ कि दण्ड प्रक्रिया की कहाँ तक प्रशंसा करें, जो अनिवार्यतः मनुष्य को और अधिक अपराध करने को बाध्य करे? क्या तुम्हारे ईश्वर ने यह नहीं सोचा था या उसको भी ये सारी बातें मानवता द्वारा अकथनीय कष्टों के झेलने की कीमत पर अनुभव से सीखनी थीं? तुम क्या सोचते हो, किसी गरीब या अनपढ़ परिवार, जैसे एक चमार या मेहतर के यहाँ पैदा होने पर इन्सान का क्या भाग्य होगा? चूँकि वह गरीब है, इसलिये पढ़ाई नहीं कर सकता। वह अपने साथियों से तिरस्कृत एवं परित्यक्त रहता है, जो ऊँची जाति में पैदा होने के कारण अपने को ऊँचा

समझते हैं। उसका अज्ञान, उसकी गरीबी तथा उससे किया गया व्यवहार उसके हृदय को समाज के प्रति निष्ठुर बना देते हैं। यदि वह कोई पाप करता है तो उसका फल कौन भोेगेगा? ईष्वर, वह स्वयं या समाज के मनीषी? और उन लोगों के दण्ड के बारे में क्या होगा, जिन्हें दम्भी ब्राह्मणों ने जानबूझ कर अज्ञानी बनाये रखा तथा जिनको तुम्हारी ज्ञान की पवित्र पुस्तकों - वेदों के कुछ वाक्य सुन लेने के कारण कान में पिघले सीसे की धारा सहन करने की सजा भुगतनी पड़ती थी? यदि वे कोई अपराध करते हैं, तो उसके लिये कौन ज़िम्मेदार होगा? और उनका प्रहार कौन सहेगा? मेरे प्रिय दोस्तों! ये सिद्धान्त विशेषाधिकार युक्त लोगों के आविष्कार हैं। ये अपनी हथियाई हुई शक्ति, पूँजी तथा उच्चता को इन सिद्धान्तों के आधार पर सही ठहराते हैं। अपटान सिंक्लेयर ने लिखा था कि मनुष्य को बस अमरत्व में विश्वास दिला दो और उसके बाद उसकी सारी सम्पत्ति लूट लो। वह बगैर बड़बड़ाये इस कार्य में तुम्हारी सहायता करेगा। धर्म के उपदेशकों तथा सत्ता के स्वामियों के गठबन्धन से ही जेल, फाँसी, कोड़े और ये सिद्धान्त उपजते हैं।

मैं पूछता हूँ तुम्हारा सर्वशक्तिशाली ईश्वर हर व्यक्ति को क्यों नहीं उस समय रोकता है जब वह कोई पाप या अपराध कर रहा होता है? यह तो वह बहुत आसानी से कर सकता है। उसने क्यों नहीं लड़ाकू राजाओं की लड़ने की उग्रता को समाप्त किया और इस प्रकार विश्वयुद्ध द्वारा मानवता पर पड़ने वाली विपत्तियों से उसे बचाया? उसने अंग्रेजों के मस्तिष्क में भारत को मुक्त कर देने की भावना क्यों नहीं पैदा की? वह क्यों नहीं पूँजीपतियों के हृदय में यह परोपकारी उत्साह भर देता कि वे उत्पादन के साधनों पर अपना व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार त्याग दें और इस प्रकार केवल सम्पूर्ण श्रमिक समुदाय, वरन समस्त मानव समाज को पूँजीवादी बेड़ियों से मुक्त करें? आप समाजवाद की व्यावहारिकता पर तर्क करना चाहते हैं। मैं इसे आपके सर्वशक्तिमान पर छोड़ देता हूँ कि वह लागू करे। जहाँ तक सामान्य भलाई की बात है, लोग समाजवाद के गुणों को मानते हैं। वे इसके व्यावहारिक न होने का बहाना लेकर इसका विरोध करते हैं। परमात्मा को आने दो और वह चीज को सही तरीके से कर दे। अंग्रेजों की हुकूमत यहाँ इसलिये नहीं है कि ईश्वर चाहता है बल्कि इसलिये कि उनके पास ताकत है और हममें उनका विरोध करने की हिम्मत नहीं। वे हमको अपने प्रभुत्व में ईश्वर की मदद से नहीं रखे हैं, बल्कि बन्दूकों, राइफलों, बम और गोलियों, पुलिस और सेना के सहारे। यह हमारी उदासीनता है कि वे समाज के विरुद्ध सबसे निन्दनीय अपराध - एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र द्वारा अत्याचार पूर्ण शोषण - सफलतापूर्वक कर रहे हैं। कहाँ है ईश्वर? क्या वह मनुष्य जाति के इन कष्टों का मज़ा ले रहा है? एक नीरो, एक चंगेज, उसका नाश हो!

क्या तुम मुझसे पूछते हो कि मैं इस विश्व की उत्पत्ति तथा मानव की उत्पत्ति की व्याख्या कैसे करता हूँ? ठीक है, मैं तुम्हें बताता हूँ। चार्ल्स डारविन ने इस विषय पर कुछ प्रकाश डालने की कोशिश की है। उसे पढ़ो। यह एक प्रकृति की घटना है। विभिन्न पदार्थों के, नीहारिका के आकार में, आकस्मिक मिश्रण से पृथ्वी बनी। कब? इतिहास देखो। इसी प्रकार की घटना से जन्तु पैदा हुए और एक लम्बे दौर में मानव। डार्विन की 'जीव की उत्पत्ति' पढ़ो। और तदुपरान्त सारा विकास मनुष्य द्वारा प्रकृति के लगातार विरोध और उस पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा से हुआ। यह इस घटना की सम्भवतः

सबसे सूक्ष्म व्याख्या है।

तुम्हारा दूसरा तर्क यह हो सकता है कि क्यों एक बच्चा अन्धा या लंगड़ा पैदा होता है? क्या यह उसके पूर्वजन्म में किये गये कार्यों का फल नहीं है? जीवविज्ञान वेत्ताओं ने इस समस्या का वैज्ञानिक समाधान निकाल लिया है। अवश्य ही तुम एक और बचकाना प्रश्न पूछ सकते हो। यदि ईश्वर नहीं है, तो लोग उसमें विश्वास क्यों करने लगे? मेरा उत्तर सूक्ष्म तथा स्पष्ट है। जिस प्रकार वे प्रेतों तथा दुष्ट आत्माओं में विश्वास करने लगे। अन्तर केवल इतना है कि ईश्वर में विश्वास विश्वव्यापी है और दर्शन अत्यन्त विकसित। इसकी उत्पत्ति का श्रेय उन शोषकों की प्रतिभा को है, जो परमात्मा के अस्तित्व का उपदेश देकर लोगों को अपने प्रभुत्व में रखना चाहते थे तथा उनसे अपनी विशिष्ट स्थिति का अधिकार एवं अनुमोदन चाहते थे। सभी धर्म, समप्रदाय, पन्थ और ऐसी अन्य संस्थाएँ अन्त में निर्दयी और शोषक संस्थाओं, व्यक्तियों तथा वर्गों की समर्थक हो जाती हैं। राजा के विरुद्ध हर विद्रोह हर धर्म में सदैव ही पाप रहा है।

मनुष्य की सीमाओं को पहचानने पर, उसकी दुर्बलता व दोष को समझने के बाद परीक्षा की घड़ियों में मनुष्य को बहादुरी से सामना करने के लिये उत्साहित करने, सभी ख़तरों को पुरुषत्व के साथ झेलने तथा सम्पन्नता एवं ऐश्वर्य में उसके विस्फोट को बाँधने के लिये ईश्वर के काल्पनिक अस्तित्व की रचना हुई। अपने व्यक्तिगत नियमों तथा अभिभावकीय उदारता से पूर्ण ईश्वर की बढ़ा-चढ़ा कर कल्पना एवं चित्रण किया गया। जब उसकी उग्रता तथा व्यक्तिगत नियमों की चर्चा होती है, तो उसका उपयोग एक भय दिखाने वाले के रूप में किया जाता है। ताकि कोई मनुष्य समाज के लिये ख़तरा न बन जाये। जब उसके अभिभावक गुणों की व्याख्या होती ह,ै तो उसका उपयोग एक पिता, माता, भाई, बहन, दोस्त तथा सहायक की तरह किया जाता है। जब मनुष्य अपने सभी दोस्तों द्वारा विश्वासघात तथा त्याग देने से अत्यन्त क्लेष में हो, तब उसे इस विचार से सान्त्वना मिल सकती हे कि एक सदा सच्चा दोस्त उसकी सहायता करने को है, उसको सहारा देगा तथा वह सर्वशक्तिमान है और कुछ भी कर सकता है। वास्तव में आदिम काल में यह समाज के लिये उपयोगी था। पीड़ा में पड़े मनुष्य के लिये ईश्वर की कल्पना उपयोगी होती है। समाज को इस विश्वास के विरुद्ध लड़ना होगा। मनुष्य जब अपने पैरों पर खड़ा होने का प्रयास करता है तथा यथार्थवादी बन जाता है, तब उसे श्रद्धा को एक ओर फेंक देना चाहिए और उन सभी कष्टों, परेशानियों का पुरुषत्व के साथ सामना करना चाहिए, जिनमें परिस्थितियाँ उसे पटक सकती हैं। यही आज मेरी स्थिति है। यह मेरा अहंकार नहीं है, मेरे दोस्त! यह मेरे सोचने का तरीका है, जिसने मुझे नास्तिक बनाया है। ईश्वर में विश्वास और रोज़-ब-रोज़ की प्रार्थना को मैं मनुष्य के लिये सबसे स्वार्थी और गिरा हुआ काम मानता हूँ। मैंने उन नास्तिकों के बारे में पढ़ा हे, जिन्होंने सभी विपदाओं का बहादुरी से सामना किया। अतः मैं भी एक पुरुष की भाँति फाँसी के फन्दे की अन्तिम घड़ी तक सिर ऊँचा किये खड़ा रहना चाहता हूँ।

हमें देखना है कि मैं कैसे निभा पाता हूँ। मेरे एक दोस्त ने मुझे प्रार्थना करने को कहा। जब मैंने उसे नास्तिक होने की बात बतायी तो उसने कहा, ''अपने अन्तिम दिनों में तुम विश्वास करने लगोगे।" मैंने कहा, ''नहीं, प्यारे दोस्त, ऐसा नहीं होगा। मैं इसे

अपने लिये अपमानजनक तथा भ्रष्ट होने की बात समझाता हूँ। स्वार्थी कारणों से मैं प्रार्थना नहीं करूँगा।" पाठकों और दोस्तों, क्या यह अहंकार है? अगर है तो मैं स्वीकार करता हूँ।

Date Written: 1931
Author: Bhagat Singh
Title: Why I Am An Atheist (Main nastik kyon hoon)
First Published: Baba Randhir Singh, a freedom fighter, was in Lahore Central Jail in 1930-31. He was a God-fearing religious man. It pained him to learn that Bhagat Singh was a non-believer. He somehow managed to see Bhagat Singh in the condemned cell and tried to convince him about the existence of God, but failed. Baba lost his temper and said tauntingly: “You are giddy with fame and have developed and ago which is standing like a black curtain between you and the God.” It was in reply to that remark that Bhagat Singh wrote this article. First appeared in The People, Lahore on September 27, 1931.

भगतसिंह